मोहन राकेश व उनके नाटक

Submitted by :

DR. NIDHI BAL

Assistant Professor in PG Department of Hindi

Hans Raj Mahila Maha Vidyalaya, Jalandhar.

मोहन राकेश

(सन् 1925-1972 ई.)

जीवन-परिचय

आधुनिक नाटक साहित्य को नयी दिशा की ओर मोड़ने वाले मोहन राकेश प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार एवं निबन्धकार मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 ई. को पंजाब के अमृतसर शहर में हुआ था। इनके पिता श्री करमचन्द गुगलानी अधिवक्ता होते हुए भी साहित्य और संगीत के प्रमी थे, जिसका प्रभाव मोहन राकेश के जीवन पर पड़ा।

मोहन राकेश ने लाहौर के ओरियण्टल कॉलेज से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद हिन्दी और संस्कृत विषयों में एम.ए. किया शिक्षा समाप्ति के अनन्तर इन्होंने अध्यापन का कार्य किया। इन्होंने मुम्बई, शिमला, जालन्धर तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन किया, परन्तु अध्यापन में विशेष रुचि न होने के कारण इन्होंने सन् 1962-63 ई. में मासिक पत्रिका 'सारिका' के सम्पादन का कार्यभर सँभाला।

कुछ समय पश्चात् इस कार्य को भी छोड़कर इन्होंने स्वतन्त्र लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। सन् 1963 से 1972 ई. तक जीवनभर स्वतंत्र लेखन ही इनकी आजीविका का आधार रहा। 'नाटक की भाषा' पर कार्य करने के लिए इन्हें नेहरू फैलोशिप भी प्रदान की गयी, लेकिन असामयिक मृत्यु होने के कारण इस कार्य में व्यवधान पड़ गया। असमय ही 3 दिसम्बर 1972 ई. में दिल्ली में इनका मृत्यु हो गया।

कृतियाँ

मोहन राकेश की प्रमुख कृतियाँ है -

- **निबन्ध-संग्रह-** परवेश, बकलमखुद
- **नाटक-** आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे
- **एकांकी-** अण्डे के छिलके तथा अन्य एकांकी, बीज नाटक, दूध ओर दाँत (अप्रकाशित)
- **रूपान्तर-** संस्कृत के शाकुन्तलम् तथा मृच्छकटिकम् नाटकों का हिन्दी नाट्य रूपान्तर
- **उपन्यास-** अँधेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल, नीली रोशनी की बाहें (अप्रकाशित)

- **कहानी-संग्रह-** क्वार्टर, पहचान तथा वारिस नामक तीन कहानी-संग्रह हैं, जिनमें कुल 54 कहानियाँ हैं।
- **यात्रावृत्त-** आखिरी चट्टान तक
- **जीवनी-संकलन-** समय सारथी
- **डायरी-** मोहन राकेश की डायरी

भाषा-शैली

भाषा-प्रयोग में मोहन राकेश सिद्धहस्त है। इनहोंने विषयानुरूप एवं प्रसंगानुकूल सरल, सहज, व्यावहारिक, संस्कृतनिष्ठ एवं परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में कहीं-कहीं दैनिक जीवन में प्रयुक्त उर्दू एवं अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इनकी भाषा संजीव रोचक और प्रवाहपूर्ण है।

इनकी रचनाओं में प्रमुखत: वर्णनात्म्क विवरणात्मक भावात्मक तथा चित्रात्मक शैलियों के दर्शन होते हैं। इनके अतिश्रिकत संवाद, सॅक्ति, नाट्य और विवेचानत्मक आदि शैलियों का प्रयोग भी इनकी रचनाओं में मिलता है।

मोहन राकेश एक उत्कृष्ट नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं-उपन्यास, कहानी, निबध, यात्राबृत्त और आत्मकथा आदि पर भी लेखनी चलायी है। आधनिक गद्य को नवीन दिशा प्रदान करने वाल सहित्यकारों में मोहन राकेश का नाम हिन्दी साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है।

आधे अधूरे

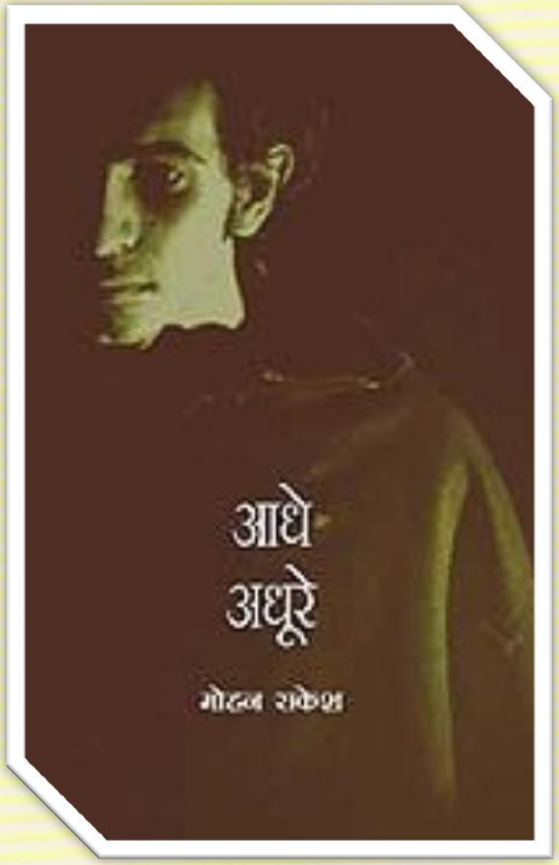

आधे अधूरे मोहन राकेश द्वारा लिखित हिन्दी का प्रसिद्ध नाटक है। यह मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित नाटक है। इसमें तीन स्त्री पात्र हैं तथा पाँच पुरुष पात्र। इनमें से चार पुरुषों की भूमिका एक ही पुरुष पात्र निभाता है। हिंदी नाटक में यह अलग ढंग का प्रयोग है। इस नाटक का प्रकाशन १९६९ ई. में हुआ था। यह पूर्णता की तलाश का नाटक है।

पात्र

- **सावित्री:-** एक कामकाजी मध्यवर्गीय शहरी स्त्री
- काले कपड़ों वाला पुरुष चार रूपों में १-महेंद्रनाथ (सावित्री का पति), २-सिंघानिया (सावित्री का बॉस), ३-जगमोहन, ४-जुनेजा
- **बिन्नी :-** सावित्री की बड़ी बेटी
- **अशोक:-** सावित्री का बेटा
- **किन्नी:-** सावित्री की छोटी बेटी
- **मनोज:-** बिन्नी का पति (मात्र संवादों में उल्लेखनीय)

विशेषता

'आधे अधूरे' आज के जीवन के एक गहन अनुभव खण्ड को मूर्त करता है। इसके लिए हिन्दी के जीवन्त मुहावरे को पकड़ने की सार्थक प्रभावशाली कोशिश की गयी है। इस नाटक की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है, जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन उनका क्रम उनका संयोजन सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है।

लिखित शब्द की यह शक्ति और उच्चारित ध्वनिसमूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य रचना बन्द और खुले दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी। यह नाट्यालेख एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के लगाव और तनाव का दस्तावेज़ है। दूसरे स्तर पर पारिवारिक विघटन की गाथा है। एक अन्य स्तर पर यह नाट्य रचना मानवीय सन्तोष के अधूरेपन का रेखांकन है।

जो लोग जिन्दगी से बहुत कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी रहती है। एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक् भूमिका निभाये जाने की दिलचस्प रंग-युक्ति का सहारा इस नाटक की एक और विशेषता है। संक्षेप में, 'आधे अधूरे' समकालीन ज़िन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। इसका गठन सुदृढ़ एवं रंगोपयुक्त है। पूरे नाटक की अवधारणा के पीछे सूक्ष्म रंगचेतना निहित है।

कथानक

'आधे अधूरे' सिर्फ़ एक नाटक ही नहीं है। यह हमारे समाज, परिवार, व्यक्ति और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में आए और लगातार आ रहे बदलाव का गम्भीर समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है। इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ में परिवार और विवाह जैसी समय-सिद्ध संस्थाओं के विघटन, मानवीय मूल्यों के पतन तथा सर्वग्रासी महत्वाकांक्षा की अन्धी दौड़ से उपजी जिन अर्थ एवं कामज विकृतियों को आज सर्वत्र सार्वजनिक तांडव करते देखा जाता है।

ये भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और पश्चिमी संस्कृति एवं मीडिया के अदम्य आक्रमण के कारण तेज़ी से उफ़नी ज़रूर हैं, लेकिन अचानक पैदा नहीं हो गई हैं। इनके बीज तो स्वतन्त्रता और विभाजन के बाद हुए मोहभंग के साथ ही हमारी धरती में पड़ गए थे। साठ के दशक से इनका अंकुरना शुरू हुआ। सत्तर के दशक में ये हमारे जीवन और समाज में कुनमुनाने–कसमसाने लगे थे।

पहले इन परिवर्तनों की दबी-घुटी स्पष्ट अभिव्यक्ति महानगर के उच्च मध्यवर्गीय परिवारों में हुई। भीतर ही भीतर इनका क्रमिक विकास और विस्तार होता रहा। बस, परिवेश और परिस्थितियों की अनुकूलता पाकर आज इनका व्यापक विस्फोट हो गया है।

प्रथम मंचन

- 'आधे अधूरे' नाटक का पहला मंचन दिल्ली में 'दिशान्तर' द्वारा ओम शिवपुरी के निर्देशन में फ़रवरी, 1969 में हुआ। नाटक के प्रस्तुतिकरण में निम्नलिखित कलाकारों ने निम्न पात्रों की भूमिका निभाई-
- काले सूट वाला आदमी - ओम शिवपुरी
- स्त्री - सुधा शिवपुरी
- पुरुष-एक - ओम शिवपुरी
- बड़ी-लड़की - अनुराधा कपूर
- छोटी लड़की - ऋचा व्यास
- लड़का - दिनेश ठाकुर
- पुरुष-दो - ओम शिवपुरी
- पुरुष-तीन - ओम शिवपुरी
- पुरुष-चार - ओम शिवपुरी

प्रकाशन

मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' पहले 19 जनवरी एवं 26 जनवरी तथा 2 फ़रवरी, 1969 के तीन अंकों में 'धर्मयुग' में क्रमशः छपा और 2 मार्च, 1969 को दिल्ली की नाट्य-संस्था 'दिशान्तर' ने इसे ओम शिवपुरी के निर्देशन में अभिमंचित भी कर दिया। नाटक ने तीखी और व्यापक प्रतिक्रिया पैदा की। हिन्दी के नाट्य समीक्षकों और पत्रकारों को यह ऐसा सतही एवं खोखला नाटक लगा, जो अपनी व्यावसायिकता को क्रान्तिकारी लिबास में छिपाने की कोशिश करता है।

कथानक की घटनाहीनता, प्रस्तावना की निरर्थकता, अनुभव-क्षेत्र की संकीर्णता, एक है अभिनेता द्वारा पाँच भूमिकाएँ निभाने को चौंकाने वाली फिज़ूल रंग-युक्ति, चरित्रों के इकहरेपन, संघर्ष के आभाव, भविष्यहीन नियतिवाद और आयातित जीवन-दृष्टि पर आधारित एक अतिनाटकीय सृष्टि जैसे अनेक आरोप लगाकर इस नाटक को साधारण और महत्त्वहीन सिद्ध करने के भरपूर प्रयत्न किए गए। इसे अनीता राकेश की किसी पूर्व प्रकाशित कहानी का नाट्य-रूपान्तर तक कहकर इसकी मौलिकता एवं रचनात्मकता को भी नकारने की कोशिश हुई। परन्तु पैंतीस वर्ष बाद पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि समय से अधिक ईमानदार, सच्चा और निर्मम मूल्यांकनकर्ता एवं निर्णायक कोई नहीं होता।

यह राकेश जी और उनके मित्रों की सम्पर्क-शक्ति का परिणाम क़तई नहीं है कि तब से अब तक लगातार 'आधे अधूरे' आधुनिक हिन्दी/भारतीय रंग-परिदृश्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, लोकप्रिय और समय-सिद्ध सार्थक नाटक माना जाता है। यह हिन्दी का पहला प्रमुख नाटक है, जो विवाह-संस्था को एक स्थिर-स्थायी व्यवस्था और घर को एक सुखी परिवार के रूप में स्थापित करने वाले सदियों पुराने मिथक को तोड़ने का प्रयास करता है।

आधे-अधूरे आज के जीवन के एक गहन अनुभव खण्ड को मूर्त करता है। इसके लिए हिन्दी के जीवन्त मुहावरे को पकड़ने की सार्थक प्रभावशाली कोशिश की गयी है।...इस नाटक की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन उनका क्रम उनका संयोजन सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। लिखित शब्द की यह शक्ति और उच्चारित ध्वनिसमूह का यही बल है जिसके कारण, यह नाट्य रचना बन्द और खुले दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी।

यह नाट्यालेख एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के लगाव और तनाव का दस्तावेज़ है। दूसरे स्तर पर पारिवारिक विघटन की गाथा है। एक अन्य स्तर पर यह नाट्य रचना मानवीय सन्तोष के अधूरेपन का रेखांकन है। जो लोग जिन्दगी से बहुत कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी रहती है।

एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक भूमिका निभाये जाने की दिलचस्प रंग-युक्ति का सहारा इस नाटक की एक और विशेषता है।

संक्षेप में कहें तो आधे अधूरे समकालीन ज़िन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। इसका गठन सुदृढ़ एवं रंगोपयुक्त है। पूरे नाटक की अवधारणा के पीछे सूक्ष्म रंगचेतना निहित है।

'आधे-अधूरे' का पहला मंचन दिल्ली में 'दिशान्तर' द्वारा श्री ओम शिवपुरी के निर्देशन में फरवरी, 1969 में हुआ।

भूमिका के बहाने.....

मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे' पहले पहल 19 एवं 26 जनवरी तथा 2 फरवरी, 1969 के तीन अंकों में 'धर्मयुग' में क्रमशः छपा और 2 मार्च, 1969 को दिल्ली की नाट्य-संस्था 'दिशान्तर' ने इसे ओम शिवपुरी के निर्देशन में अभिमंचित भी कर दिया। नाटक ने तीखी और व्यापक प्रतिक्रिया पैदा की। हिन्दी के नाट्य समीक्षकों और पत्रकारों को यह ऐसा सतही एवं खोखला नाटक लगा जो अपनी व्यावसायिकता को क्रान्तिकारी लिबास में छिपाने की कोशिश करता है।

कथानक की घटनाहीनता, प्रस्तावना की निरर्थकता, अनुभव-क्षेत्र की संकीर्णता, एक है अभिनेता द्वारा पाँच भूमिकाएँ निभाने को चौंकाने वाली फिज़ूल रंग-युक्ति, चरित्रों के इकहरेपन, संघर्ष के आभाव, भविष्यहीन नियतिवाद और आयातित जीवन-दृष्टि पर आधारित एक अतिनाटकीय सृष्टि जैसे अनेक आरोप लगाकर इस नाटक को साधारण और महत्त्वहीन सिद्ध करने के भरपूर प्रयत्न किए गए। इसे अनीता राकेश की किसी पूर्व प्रकाशित कहानी का नाट्य-रूपान्तर तक कहकर इसकी मौलिकता एवं रचनात्मकता को भी नकारने की कोशिश हुई।

परन्तु आज पैंतीस, वर्ष बाद पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि समय से अधिक ईमानदार, सच्चा और निर्मम मूल्यांकनकर्ता एवं निर्णायक कोई नहीं होता। और यह राकेश और उनके मित्रों की सम्पर्क-शक्ति का परिणाम कतई नहीं है कि तब से अब तक लगातार 'आधे-अधूरे' आधुनिक हिन्दी / भारतीय रंग-परिदृश्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, लोकप्रिय और समय-सिद्ध सार्थक नाटक माना जाता है। यह हिन्दी का पहला प्रमुख नाटक है जो विवाह-संस्था को एक स्थिर-स्थायी व्यवस्था और घर को एक सुखी परिवार के रूप में स्थापित करनेवाले सदियों पुराने मिथक को तोड़ने का प्रयास करता है।

इस बीच 'आधे-अधूरे' ने एक सन्दर्भ-रचना का स्तर प्राप्त कर लिया और राकेश के समकालीन और बाद की पीढ़ी का शायद ही कोई उल्लेखनीय नाटककार हो जिसने इसे एक प्रेरणा-स्रोत या रचनात्मक चुनौती के रूप में स्वीकार न किया हो। सम्भवतः 'अन्धायुग' के अलावा 'आधे-अधूरे' ही हिन्दी का एक मात्र ऐसा नाटक है जिसने अखिल भारतीय स्तर पर कल्पनाशील निर्देशकों, प्रतिभावान अभिनेताओं, कुशल पार्श्वकर्मियों और प्रबुद्ध प्रेक्षकों-पाठकों को सर्वाधिक आकर्षित और प्रभावित किया है। समय ने 'आधे-अधूरे' के बारे में उस वक्त व्यक्त की गईं सभी आशंकाओं और आपत्तियों को निराधार सिद्ध कर दिया है।

इस सन्दर्भ में आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि इस नाटक में प्रस्तुत अनुभव की प्रामाणिकता, मनः स्थितियों की सघन विस्फोटकता, भाषा की जीवन्तता, परिवेश की विश्वसनीयता तथा कथ्य और शिल्प की अन्वितिपरक एकाग्रता के प्रति रंगकर्मियों एवं नाट्य-प्रेमियों की ग्रहणशीलता लगातार बढ़ती ही गई है।

'आधे-अधूरे' सिर्फ़ एक नाटक ही नहीं है। यह हमारे समाज, परिवार, व्यक्ति और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में आए और लगातार आ रहे बदलाव का गम्भीर समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है। इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ में परिवार और विवाह जैसी समय-सिद्ध संस्थाओं के विघटन, मानवीय मूल्यों के पतन तथा सर्वग्रासी महत्वाकांक्षा की अन्धी दौड़ से उपजी जिन अर्थ एवं कामज विकृतियों को आज हम सर्वत्र सार्वजनिक तांडव करते देख रहे हैं।

ये भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और पश्चिमी संस्कृति एवं मीडिया के अदम्य आक्रमण के कारण तेज़ी से उफ़नी ज़रूर हैं, लेकिन अचानक पैदा नहीं हो गई हैं। इनके बीज तो स्वतन्त्रता और विभाजन के बाद हुए मोहभंग के साथ ही हमारी धरती में पड़ गए थे। साठ के दशक से इनका अंकुरना शुरु हुआ।

सत्तर के दशक में ये हमारे जीवन और समाज में कुनमुनाने–कसमसाने लगे थे। पहले-पहल इन परिवर्तनों की दबी-घुटी स्पष्ट अभिव्यक्ति महानगर के उच्चमध्यवर्गीय परिवारों में हुई। भीतर ही भीतर इनका क्रमिक विकास और विस्तार होता रहा। बस, परिवेश और परिस्थितियों की अनुकूलता पाकर आज इनका व्यापक विस्फोट हो गया है।

अगर हम गहराई और बारीकी से सातवें दशक का गम्भीर अध्ययन करें तो पाएँगे कि पारम्परिक मूल्यों, मर्यादाओं और सम्बन्धों से बदलते समय का सतत संघर्ष तब भी जारी था। परन्तु हम अपनी सभ्यता, संस्कृति और आदर्शवादिता के चलते उस बदलती वास्तविकता को देखने-मानने में असमर्थ थे। ऐसे में मोहन राकेश के अतिसंवेदनशील मन के राडार ने भारतीय मध्यम वर्गीय जीवन एवं परिवेश तथा पारिवारिक (विशेषतः स्त्री-पुरुष) सम्बन्धों में उथल-पुथल करती समय की दबी-छुपी कारगुज़ारियों को साफ़तौर से पहचान लिया था।

यही कारण है कि उस समय जिन लोगों को 'आधे-अधूरे' का कथ्य कुछ अविश्वसनीय और आयातित-सा लगता था, आज वे उसे एकदम स्वाभाविक और सच्चा मानकर सहज स्वीकार लेते हैं। तब इसे एक ख़ास घर की कहानी मानने वालों को अब यह नाटक घर-घर की कहानी लगने लगा है। तब का चौंकाने वाला दृश्य आज का सामान्य यथार्थ बन गया है। इस नाटक की सर्वग्राह्यता और समकालीनता का यही रहस्य है।

राकेश के नाटकों के बारे में यह एक दिलचस्प तथ्य है कि 'लहरों के राजहंस' को वह पहले से लिख रहे थे, किन्तु 'अषाढ़ का एक दिन' बीच में आया और उससे पहले पूरा हो गया। इसी तरह, "पैर तले की ज़मीन' के कई शीर्षकों, चरित्रों, दृश्यों के विभाजन तथा कुछेक प्रसंगों के आरम्भिक नोट्स राकेश ने अपनी एक डायरी में 26 जुलाई, 1994 को ही लिख लिए थे। इसके बारे में वह सोच-विचार कर ही रहे थे कि 'आधे-अधूरे' बीच में आ गया और लम्बे रचनाकाल के बावजूद 'पैर तले की ज़मीन' से पहले पूरा हो गया।

'आधे-अधूरे' नामक अपने इस 'नए-नाटक' के लेखन के दौरान राकेश ने सुप्रसिद्ध अभिनेता-निर्देशक और मित्र श्यामानन्द जालान से कई बार बातचीत की। कलकत्ता में 3 जुलाई, 1966; दिल्ली में 20 अक्टूबर, 1967 तथा 22 अक्टूबर, 1967 की बातचीतों का तो लिखित उल्लेख स्वयं राकेश ने अपनी डायरी में ही किया है। बहुतों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिन्दी नाट्य-भाषा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाले मोहन राकेश भी, अपने समकालीन कुछ बड़े लेखकों की तरह, अपनी कई रचनाओं का आरम्भिक काम अंग्रेजी में करते थे।

उनकी हाल ही में उपलब्ध मार्च, 1968 की एक डायरी न केवल इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करती है बल्कि 'आधे-अधूरे' की रचना प्रक्रिया पर भी प्रकाश डालती है। इसके 116 पृष्ठों पर राकेश के अंग्रेज़ी हस्तलेख में 'आधे-अधूरे' के विस्तृत नोट्स, चरित्रों के नाम, रूपरेखा, कथा-क्रम, संवाद, फ़ेड-आउट और फ़ेड-इन के साथ पात्रों के सुचिन्तित प्रवेश-प्रस्थान भी दर्ज किए गए हैं। इसमें इस नाटक के छह प्रारूप लिखे गए हैं।

इनसे दो नई बातें सामने आती हैं। एक तो ये कि अन्तिम प्रारूप तैयार होने से पहले तक इस नाटक का नाम 'आधे और अधूरे' था। दूसरी बात यह कि प्रस्तावना के लिए भारतीय नाटकों के परम्परागत पात्र सूत्रधार के लिए नाटककार ने पहले 'वह कोई एक' नामक चरित्र के बारे में सोचा था और जल्दी ही उस सोच को ख़ारिज भी कर दिया था। राकेश को दरअसल सूत्राधारनुमा एक ऐसे आधुनिक चरित्र की ज़रूरत थी जो नाटक के शेष पुरुष पात्रों के ऊपर में भी पहचाना जा सके। अर्थात् जो पाँचों पुरुष भूमिकाएँ अभिनीत करे। पहले प्रारूप के बाद ही राकेश ने इसे 'काले सूटवाला आदमी' के रूप में लगभग निश्चित कर लिया था।

आरम्भिक प्रारूप में सबकी उम्र के उल्लेख के साथ स्त्री का नाम रंजना सचदेव, पुरुष का बालकृष्ण सचदेव और बच्चों के नाम अशोक सचदेव, बीना सचदेव तथा कल्पना सचदेव दिए गए हैं। फिर बीना और कल्पना के नाम के साथ लगे 'सचदेव' को काट दिया गया है। एक पात्र मनमोहन गुलाटी को काटकर मनोज गुलाटी किया गया है। शेष पात्रों में चन्द्रकान्त जुनेजा, जगहमोहन कपूर तथा हरीश महेन्द्र के नाम लिखे गए हैं। आगे चलकर 'काले सूटवाला', उसकी पत्नी, उसका लड़का, उसकी बड़ी लड़की और उसकी छोटी लड़की—नामक केवल पाँच पात्रों को ही रखा गया है।

लेकिन पाँचवें प्रारूप में मंच-सज्जा के जो रेखाचित्र के साथ पात्र-परिचय में काले सूटवाला, पुरुष-I, पुरुष-II, पुरुष-III, पुरुष-VI, स्त्री, बड़ी लड़की, छोटी लड़की और लड़के का उनकी वेशभूषा के साथ उल्लेख किया गया है। सम्भव है इन नामों वाले व्यक्ति कभी राकेश के परिचय-क्षेत्र में आए हों और उनकी जानी-पहचानी ठोस विशेषताओं के आधार पर उन्होंने इन चरित्रों की परिकल्पना की हो।

बाद में कथ्य को विस्तृत एवं व्यापक बनाने के लिए शायद इन अनुभवगत मूर्त व्यक्ति-चरित्रों को अमूर्त जाति-वाचक पात्र में बदल दिया गया हो। यहाँ आकर शीर्षक को लेकर संशय फिर उभरा है और दो स्थानों पर अलग-अलग ढंग से 'आधे-अधूरे' लिखकर देखा गया है। अंग्रेजी में लिखे छठे और मोटे तौर पर अन्तिम प्रारूप को कुल बीस सीक्वैंसों या दृश्यों में बाँटा गया है। इस प्रारूप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ राकेश ने काले सूटवाले को केवल प्रस्तावना में प्रस्तुत करने के बजाय दो-तीन जगह बीच में और नाटक के अन्त में भी इस्तेमाल किया है।

दूसरे प्रारूप का आरम्भ काले सूट वाले आदमी और अन्य कलाकारों द्वारा नाटक के संवाद याद करने या उसकी दूसरी समस्याओं की चर्चा के साथ जैसे पूर्वाभ्यास के से दृश्य के रूप में भी परिकल्पित करके देखा है। इस सन्दर्भ में दिलचस्प तथ्य यह है कि राकेश द्वारा परिकल्पित और रद्दा इन दोनों युक्तियों/विकल्पों का प्रयोग कालान्तर में क्रमशः अमाल अल्लाना और त्रिपुरारी शर्मा ने अपनी प्रस्तुतियों में अपनी मौलिक सोच एवं समझ से किया।

इस सारी नेपथ्य-कथा को यहाँ देने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि हम यह सत्य समझ सकें कि प्रस्तावना और काले सूटवाले आदमी की विभिन्न भूमिकाओं वाली युक्ति पाठक-दर्शक को चौंकाने या बेवजह प्रभावित करने के लिए न तो आरोपित थी और न ही बाद में जोड़ी गई थी।

मोहन राकेश के विभिन्न नाटकों का संक्षिप्त परिचय

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। किंतु नाटककार के रूप में उनका स्थान सर्वोपरी है। आधुनिक हिन्दी नाटक के विकास यात्रा में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे - अधूरे' ने महत्वपूर्ण योगदान निभाया है।

नाटक के बारे में राकेश की धारणा है कि जिस नाटक में रंग मंचीय अपेक्षाओं को उपेक्षा हुई, साहित्यिक मूल्य रहते हुए भी नाट्य कृति नहीं मानी जा सकती। यह कथन से स्पष्ट होता है कि नाटक की संपूर्णता अभिनय – प्रदर्शन में निर्भर है। इस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे - अधूरे' और 'पैर तले की जमीन' दूसरों को नमूना बनकर रहता है।

मोहन राकेश
आषाढ़ का एक दिन

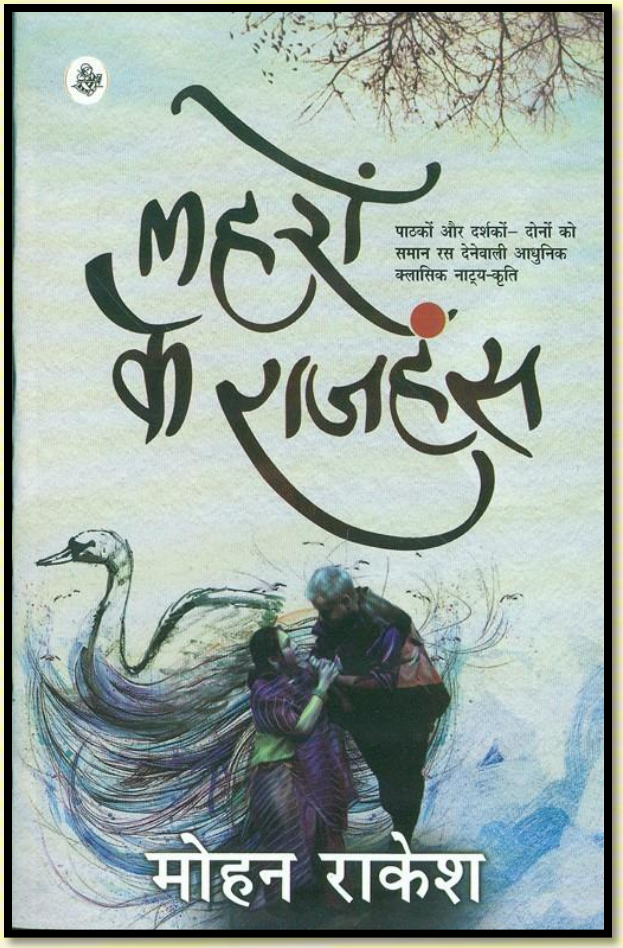
लहरों के राजहंस
पाठकों और दर्शकों– दोनों को समान रस देनेवाली आधुनिक क्लासिक नाट्य-कृति
मोहन राकेश

आषाढ़ का एक दिन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक की श्रृंखला में 'आषाढ़ का एक दिन' एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उल्लेखनीय है। यह राकेश का सर्वप्रथम, बहुचर्चित तथा लोक प्रिय नाटक है। इसमें कवि कालिदास को एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में ऐतिहासिक पात्रों के साथ काल्पनिक पात्र भी है। राकेश ने इतिहास और कल्पना के सामंजस्य से प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों को समन्वित करके शाश्वत सत्य को युगानुरूप पुष्ट किया है। इस नाटक का कालिदास इतिहास का कालिदास नहीं, राकेश – कालीन कालिदास है।

लहरों के राजहंस

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा, सशक्त नाटक है। 'आषाढ़ का एक दिन' यदि भावना में भावना का वरण की कहानी है तो 'लहरों के राजहंस' नारी के आकर्षण – विकर्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। एक में समर्पित नारी का चित्रण है तो दूसरे में रूप पर गर्व करने वाली नारी की विविध मन स्थितियों के संदर्भों का आलेखन है। कालिदास अपार मानसिक संघर्षों से पीड़ित आधुनिक मानव का प्रतिरूप तो नन्द प्रवृत्ति और निवृत्ति में पिसकर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर जीवन के चौराहे पर खड़ा है। इसमें नाटककार राकेश ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के मध्य उलझे हुए व्यक्ति की चेतना को नन्द और सुन्दरी के द्वंद्व के माध्यम से मुखरित करने का प्रयास किया है।

आधे – अधूरे

यह नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की तुलना में भिन्न कोटि का नाटक है। आलोच्य नाटक में आज के मानव की अनियंत्रित एवं अंतहीन यंत्रणाओं के बीच नारी मुक्ति भावना, वैवाहिक संघर्षों की विडंबना, पुरुष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन मूल्यों का प्रकर्ष है। समूचा नाटक घर के चार दीवार के अंदर के अधूरापन की कथा व्यंजित करता है।

'आधे – अधूरे' में राकेश ने रूमानियत और इतिहास के संदर्भों की उपेक्षा करके औसत दर्जे के आदमी को अपनी विषय वस्तु का आधार बनाया है।

संक्षेप में कहें तो 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की तुलना में 'आधे - अधूरे' हिन्दी नाटककारों की इक्कीसवीं सदी में जाने वाली पीढ़ी के लिए चुनौती के नवीन आयाम उद्घाटित करता।

पैर तले की ज़मीन

'पैर तले की ज़मीन' मोहन राकेश का अंतिम, किंतु अधूरा नाटक है जिसे उनके आत्म मित्र कमलेश्वर ने राकेश के मृत्यु के बाद पूरित किया । अनिता राकेश के शब्दों में :- " पैर तले की ज़मीन " को अपनी आँखें मूंद जाने से वर्षों पहले ही राकेश ने लिखा था । जिस दिन धोखा लेकर वे सदा के लिए चले गये थे तब भी टाइपरैटर पर इसी टक का एक पृष्ठ, आधा टाइप किया, आधा खाली रह गया था ।"(पैर तले की ज़मीन, अनिता राकेश, पृष्ठ - 5) इस नाटक में राकेश ने शब्दों और नेपथ्य की ध्वनियों के मिले – जुले प्रभाव को रंगमंच पर एक नये प्रयोग के रूप में प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के सामाजिक मूल्य – विघटन तथा मानवीय संबंधों के खोखलापन को मूर्त किया है ।

निष्कर्ष

मोहन राकेश के नाटक के अध्ययन हमें यह निष्कर्ष पर पहुंचाते है कि पारिवारिक – वातावरण, शिक्षा - दीक्षा तथा अनुप्रासंगिक क्रिया – कलापों के एकीकृत रूप से नाटककार मोहन राकेश का व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण हुआ।

यद्यपि राकेश की पकड़ नाटक के साथ कहानी, उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाओं में भी थी तो भी इनकी ख्याति नाटककार के रूप में सचमुच अद्वितीय रही।

मोहन राकेश के बाहर – भीतर चलते रहे तनाव ने समयोचित रूप से उन्हें कुछ करने का मौका न दिया। राकेश की मानसिकता उनके नाटकों के कालिदास, नन्द और महेन्द्रनाथ में भी स्पष्ट उभरकर आया।

धन्यवाद